जन्या सुतस्ताडितको रुदन् सन्, सनीरनेत्रः सहसा हसन् सः।
दृष्टोभनिमेषोभ्रतिशोधभावो, यथा यथाजातयतिः स्थिरीस्यात्।।

जननी सुत को ताड़ित करती नेत्र सजल हो सुत रोता।
माँ सहलाती, भूल तुरत सब हँसमुख सुत प्रत्युत होता।।
नेत्र रहे प्रतिशोध-भाव बिन अपलक बालक जैसा हो।
महाभाग्य वह यथाजात यति व्रत का पालक वैसा हो।।६६।।

अर्थ – माता के द्वारा ताडित पुत्र रोता है, आंसू बहाता है पर शीघ्र ही खिल उठता है उसमें स्पष्ट ही बदला न लेने का भाव जैसा देखा गया है वैसा ही निर्ग्रन्थ साधु में भी देखा जाना चाहिये, उसे भी स्थिर रहना चाहिये।।६६।।

वर्णस्य पात्रं किल विश्वशास्त्रं, मलस्य पात्रं तव रूपिगात्रम्।
चिद्वस्तुमात्रं हि सुखस्य पात्रं, सर्वं ह्यपात्रं स्मर चेतसाऽत्र।।

शब्दों के तो पात्र रहे हैं जग के सारे शास्त्र महा।
मल का कोई पात्र यहां है तेरा जड़मय गात्र रहा।।
सुख का पावन पात्र रहा तो शुचितम चेतन मात्र रहा।
ऐसा मन में चिंतन कर लो अपात्र सब सर्वत्र रहा।।६७।।

अर्थ – समस्त शास्त्र वर्ण – अक्षरों के पात्र हैं, तेरा सुन्दर शरीर मल का पात्र है। एक चैतन्य वस्तु ही सुख का पात्र है इसके बिना सभी सुख के अपात्र है, ऐसा तू मन से स्मरण कर।।६७।।

या दृष्टा स्त्री प्रकृतिः साऽमूर्तो यो नियमतः स पुरुषः।
दृष्टौ स्त्रीपुरुषौ तु व्यवहारेणात्र समयोक्तौ।।

जो भी देखी जाती हमसे वही प्रकृति स्त्री कहलाती।
अमूर्त जो है पुरुष रहा वह ऐसी कविता यह गाती।।
मूर्त रूप से देखा जाता स्त्री पुरुषों का अभिनय जो।
केवल यह व्यवहार रहा है भीतर निश्चय अतिशय हो।।९८।।

अर्थ – जो देखी गई है वह स्त्री रूप प्रकृति है और जो अमूर्त है – दृष्टिगोचर नहीं है वह पुरुष है। शास्त्र में कहे गये जो स्त्री पुरुष हैं वे व्यवहार से ही कहे गये है।।९८।।

क्षुद्रोऽस्मि बोधेन बलेन वीर, त्वदाश्रयात् स्याद् विभुता ध्रुवात्र।
स्याद्गमे सा नदिका लघिष्ठा, नदीपतिं प्राप्य विमानपात्रा।।

बल में बालक हूं किस लायक बोध कहां मुझ में स्वामी।
तब गुणगण की स्तुति करने से पूर्ण बनूं तुम सा नामी।।
गिरि से गिरती सरिता पहली पतली सी ही चलती है।
किन्तु अन्त में रूप बदलती सागर में जा ढलती है।।९९।।

अर्थ – हे वीर ! मैं ज्ञान और बल से क्षुद्र हूँ – हीन हूँ, परन्तु आपके आश्रय से मुझमें निश्चित ही विभुता – विशालता हो सकती है। जैसे कि नदी उद्गम स्थान पर अत्यन्त लघु होती है, परन्तु समुद्र को पाकर वह विशाल प्रमाण का पात्र हो जाती है।।९९।।

नीतेः प्रणेता शिवपन्थनेता, नीत्यै मया यः प्रणतिं सुनीतः।
धनाप्तये निर्धनिभिर्धनी किं, सेव्यो न वा पृच्छति नीतिरेषा।।

रहे नीति के वीर ! प्रणेता शिवपक्ष के जो नेता हो!
नीति प्राप्त हो तुम्हे भजूं मैं सकल-तत्त्व के वेत्ता हो।।
क्यों न निर्धनी करे धनिक की सेवा धन से प्रीति रही।
रीति नीति हम कभी न भूलें गीत गा रही नीति यही।।१००।।

समय एवं स्थान परिचय
धरम व्योम गति गन्ध का वीरजयन्ती-योग।
मिला पुण्य के योग से मेटे भव-भव रोग।।
सम्मेदाचल तीर्थ के पाद प्रान्त में बैठ।
लिखा ईसरी नगर में काव्य रहा यह श्रेष्ठ।।

अर्थ – जो नीति के रचयिता है तथा मोक्षमार्ग के नेता हैं ऐसे महावीर भगवान् को ही मैंने नीति – नीतिशतक की पूर्ति के लिये नमस्कार किया है। क्या निर्धन मनुष्यों के द्वारा धन प्राप्ति के लिये धनी पुरुष सेवनीय नहीं है? यह नीति आप से पूछती है।।१००।।

गुरुस्तुतिः

श्रीज्ञानसागरसुमन्धनजातविद्याम्
पीत्वा सुनीतिशतकं लिखितं मयेदम्।
द्यां मे न मन्दमरिच्छलोकपूजाम्,
विद्यादिसागरतनुर्लघुना यतःस्याम ।।१०१।।

मंगलकामना

विभावानामभावेऽस्मिन् ध्यानयोगेन भाविता।
साक्षात्शान्तिर्नमस्तरस्मै गताय स्वं चिदात्मने ।।१।।
रतो भव निजद्रव्ये रतिर्दुःखं निजेतरे।
चिरं कार्य कृतं त्वन्यत् तस्मात् कुरु परेतरम् ।।२।।
सुखे दुःखे विधेर्जाते नीतिविदां कथं मनः।
तिरः पुरस्कृतं केन शतधैव तमःकृतम् ।।३।।
तत्वदादीनि चैतानि कस्यापि स्युर्न चेतसि।
मितितिथिगतीमानि तिष्ठेत् सन्मात्रमेव हि।।४।।

रचनाकाल एवं स्थान परिचय

सम्मेदाचलपूजायां रतेसरीपुरे शुभे।
रस-रव-रुप-गन्धान्दे[1] वीर वीरोदयाह्विके ।।५।।
पूर्णीभूतमिदं श्राव्यं काव्यं काव्यकलाङ्क्तम्
पठनीयं समाशोध्य बुधैर्गुणोपजीविभिः ।।६।।

१. दिगम्बर जैनाचार्य १०८ श्री ज्ञानसागर महाराज के शिष्य संतशिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर महाराज के द्वारा यह सुनीतिशतक संस्कृत भाषा में तीर्थराज श्री सम्मेदशिखर के पादप्रान्त में अवस्थित ईसरी नगर (गिरिडीह) बिहार, में रस = ६, रव =आकाश = ०, रुप =५, गन्ध = २, यानी ६०५२, अंकानां वामतो गति के अनुसार वीर निर्वाण संवत् २५०६ (विक्रम संवत् २०४०, शक् संवत् १६०५) के महावीर जयन्ति दिवस – चैत्र शुक्ल त्रयोदशी, सोमवार, २५ अप्रेल १९८३ के दिन पूर्ण हुआ।

जिनवरा-नन-नीरज-निर्गते!
गणधरैः पुनरादर-संश्रिते!
सकल-सत्व-हिताय वितानिते!
तदनु तेरिति हे! किल शारदे!।।१।।

जिन मुख पंकज से निकली हो,
सविनय ऋषियों से बिखरी हो।
सकल लोक का हित हो, तम को
हरो शारदे ! वर दो हमको।।१।।

सकल-मानव-मोदविधायिनि !
मधुर-भाषिणि ! सुन्दररूपिणि !
गतमले ! द्वयलोक-सुधारिणि !
मम मुखे वस पापविदारिणि !।।२।।

मानव मन को सुधा पिलाती,
इह पर भव में सुधार लाती।
कोकिल कण्ठ रूप सलोना,
मम मुख में बस! बसो लसोना।।२।।

असि सदा हि विषक्षयकारिणि !
भुवि कृदृष्ट्य हयेऽतिविरागिनि !
कुरू कृपां करुणे करवल्लकी
मयि विभो पदपंकज-षट्पदे !।।३।।

विषय दृष्टि की नागिन कंपती,
तुम करूड़ानी प्रभु गुण जपती।
प्रभु पद पंकज रत मुझ अलि पर,
वीणा लेकर, करुणा कर कर।।३।।

उपलजो निज-भाव-महो यदा
सुरस-योगत आशु विहाय सः।
कनक-भाव-मुपैति समेमि किं
न शुचि-भाव-महं तव योगतः।।४।।

सुरस-योग से लोहा नीला,
बनता जिस विध स्वर्णिम पीला।
मैं भी उस विध तव संगति से,
क्यों न बनूँ शुचि प्रभु सन्मति से।।४।।

जगति भारति! तेऽक्षि-युगं खलु
नय मिषेण कुमार्ग-रता-गमम्।
नयति हास्यपदं न तदास्मय-
मयि! वचोऽमृत-पूर्ण-सरोवरे!।।५।।

वचनामृत पूरित तुम सर हो,
नमन युगल तव सुनय प्रखर हो।
मिथ्या आगम का उपहासा,
करे भारती यहाँ प्रकाशा।।५।।

वृषजलेन वरेण वृषापगे!
शमय तापमहो! मम दुस्सहम्।
सुख-मुपैमि निजीय-मपूर्वकं
द्रुतमहं लघुधी-रथ येन हि।।६।।

धर्मामृत की वर्षा करके।
ताप हरौ मुझे हर्षा करके।
सुखमय जीवन अथाह मम हो,
धर्मामृत के प्रवाह तुम हो।।६।।

शिरसि तेन हि कृष्णतमाः कचा-
स्त्वयि न ते निलयं परिगम्य वै।
परम-तामसका बहिरागता
इति सरस्वति! हे!किल मे वचः।।७।।

यूँ मानूँ तव सर के सारे,
कुटिल कुटिलतम केश न काले।
तुम में आश्रय जब न पाई,
पाप पंक्तियों बाहर आई।।७।।

विगत-कल्मष-भाव-निकेतने!
तव कृता वर-भक्ति-रियं सदा।
विभवदा शिवदा पविभूयता-
मिति ममास्ति शिशोशुभकामना।।८।।

प्रशम भाव के भवन बनी हो,
भक्त बना तब भक्ति बनी यों।
भव मिट, शिव हो, रहे काम ना,
इस शिशु की बस यही कामना।।८।।

शशिकलेव सितासि विनिर्मले !
विकच-कंज-जय-क्षय-लोचने !
यदि न, मानवकोऽतिसुखायते
त्वदवलोकन-मात्र-तया कथम्।।९।।

कमल हारते तुम दृग लख कर,
लसी शशी सी शुभे! सुधाकर!
हमें बता दो यदि ना यों हो,
तुमको लख मुनि प्रमुदित क्यों हो?।।९।।

शशि कला वदनाप्रभया जिता,
नयन-हारितया तव शारदे।
सपदि वै गतमान-तयेति सा
नखमिषेण तवांघ्रियुगंश्रिता।।१०।।

तब मुख की आभा से जीती,
चन्द्र चाँदनी फिर भी जीती।
तभी शारदे! तुम पद सेवा,
पद नख मिष करती स्वयमेवा।।१०।।

श्रुतियुगं तव मान-मिषेण वै,
वितथ-मान-मतं परिदूष्य च।
जिनमते गदितं यतिभिः परै-
र्यदिति सूचयतीह वरं हि तत्।।११।।

श्रवण युगल तब प्रमाण दी हैं,
कहता पर, मत प्रमाण नी है।
कहा गया यतियों से प्यारा,
प्रमाण जिनमत है आधारा।।११।।

इह सदाऽऽस्वनितं शुभकर्मणि,
भवतु मे चरणं च सुवर्त्मनि।
जगति वंद्यत एव सरस्वती,
तनुधिया सदया ह्यथ या मया।।१२।।

कर्त्तव्यों में मेरा मन हो,
शिव पथ पर ही सदा चरण हो।
सरस्वती ! तब सदय शरण हो,
मन्द मती का तुम्हें नमन हो।।१२।।

समग्र १ परिशिष्ट

- **श्रमण शतक** -
  १. कैलाशचन्द पाटनी, मंत्री
  आ.इ.दि. भगवान महावीर
  २५०० वाँ निर्वाण – महोत्सव सोसाइटी
  अजमेर संभाग क्षेत्रीय समिति
  नसिया मार्ग, अजमेर (राज.) १९७४
  २ दर्शनाचार्य गुलाबचंद्र जैन, मंत्री
  २५०० वाँ निर्वाण महोत्सव सोसाइटी
  जबलपुर संभाग क्षेत्रीय समिति
  जबलपुर (म.प्र.) १९७७
  ३. शरदकुमार बनारसी,
  छिन्दवाड़ा (म.प्र.) १९७८

- **भावना शतक - (अपर नाम तीर्थकर ऐसे बने)**
  निर्ग्रन्थ साहित्य प्रकाशन समिति,
  कलकत्ता, १९७५
  जैन सूचना केन्द्र
  १० ए, चितपुर स्पेयर
  कलकत्ता – ७

- **निरंजन शतक - (ई. सन् १९७७)**
  श्री सिद्धक्षेत्र कमेटी
  कुण्डलपुर, १९७७

- **परीषह जय शतक (अपरनाम ज्ञानोदय)**
  दिगम्बर जैन मुनि संघ
  स्वागत समिति
  सागर, १९८२

- **सुनीति शतक - (ई. सन् १९८३)**
  १. रतनलाल हिम्मतचंद्र जैन
  कलकत्ता ई सन् १९८३
  २ आचार्य श्री विद्यासागर